समकालीन साहित्य और आदिवासी विमर्श

प्रधान संपादक
डॉ. आसिफ उमर

संपादक
मो. आज़म शेख

अनुक्रम

	संपादकीय	5
1.	आदिवासी भगौरिया पर्व का सांस्कृतिक महत्त्व का अध्ययन **जितेंद्रसिंह अवास्या**	9
2.	समकालीन साहित्य में आदिवासी जनचेतना **प्रा. चौधरी अनिता विश्वानाथ**	15
3.	वैश्विक संदर्भ में आदिवासी समुदाय **अनीश कुमार**	20
4.	समकालीन साहित्य और आदिवासी-विमर्श **सुरेंद्र कुमार**	26
5.	आदिवासी-विमर्श के संदर्भ में 'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास **सीमा देवी**	52
6.	आदिवासी विस्थापन की त्रासदी **संजय कुमार सिंह**	59
7.	आदिवासी जीवन और मुंडा समाज **ललिता गुप्ता**	66
8.	समकालीन साहित्य में आदिवासी जनचेतना **प्रा. चौधरी अनिता विश्वानाथ**	78
9.	समकालीन साहित्य में आदिवासी चिंतन **शांति लाल खराड़ी**	83
10.	समकालीन साहित्य में आदिवासी चिंतन **दीपक कुमार थापा** **उत्तम चंद**	90
11.	आदिवासी जनजीवन का यथार्थ-ग्लोबल गाँव के देवता **सारिका राजाराम कांबळे**	95
12.	भारतीय परिदृश्य में आदिवासी **डॉ. बलराम गुप्ता**	100

समकालीन साहित्य में आदिवासी जनचेतना

प्रा. चौधरी अनिता विश्वानाथ
गोविंदलाल कन्हैयालाल जोशी, (रात्रीचे) वाणिज्य महाविद्यालय, लातूर
choudharyanita20101989@gmail.com

इक्कीसवी सदी के विमर्शो में आदिवासी विमर्श केंद्र में है। जहाँ कुछ विमर्श राजनीति में पले तो कुछ अस्मिता का अस्तित्व को लेकर वाद-विवाद के विषय रहे, वही आदिवासी विमर्श में राजनीति और अस्मिता दोनो का समावेश है। दलित साहित्य की तर्ज पर ही आदिवासी साहित्य की सैद्धांतिकी निर्मित करने के प्रयास जारी है। गैर आदिवासियों का आदिवासी विषयक साहित्य भी साम्राज्यवाद विरोधी अभियान में आदिवासियों को महज आर्थिक संघर्ष के रुप में देखता है। सांस्कृतिक तौर पर भी आदिवासी दर्शन और साहित्य को आर्य संस्कृति में समाहित करने का प्रयास करता है। आदिवासी शब्द का शाब्दिक अर्थ है, आदिम युग में रहनेवाली जातियाँ। यह भी प्रमाण मिलता है कि, औपनिवेशिक युग के पूर्व आदिवासियों की अपनी स्वतंत्र सत्ता थी। जल, जंगल, जमीन और प्रकृति के संसाधनों पर उनका अधिकार था। परंतु जैसे-जैसे साम्राज्यवादी ताकते बढ़ती गई, औपनिवेशिक सत्ताएँ मजबुत होती गई, वैसे-वैसे आदिवासियो का शोषण और उन पर अन्याय अत्याचार बढ़ता गया। उनके संसाधनों पर जबरन कब्जा किया जाने लगा, उन्हे अपनी स्वायत्त और अस्मिता के लिए जितना और जिस व्यापक पैमाने पर आदिवासियों ने विद्रोह किया, उतना देश के किसी अन्य तबके जनमानस में देखने को नहीं मिलता।

यह हकीकत है की इस धरा का मूल आदिवासी होने के बावजूद तथाकथित सभ्य समाज की बर्बरता से यह समुदाय जंगलो, कदराओ की ओट में रहने के लिए विवश रहा। प्रकृति से साहचर्य स्थापित कर यह समुदाय जल, जंगल और जमीन तथा प्रकृति के किसी कोने में दुबका रहा। विकास और सुविधा के संसाधन से वंचित रहा। परंतु दर-ब-दर विस्थापित होने के बावजूद इस समुदाय ने अपनी संस्कृति, सभ्यता, भाषा को कभी त्यागा नहीं। लाभ-लोभ की प्रवृत्ती से दुर रहकर

आदिवासी समुदाय ने सदियों से जंगलों में कंदमूल खाकर, झरनो का पानी पीकर जीवनयापन किया। पूरे आत्माभिमान सहित अपनी भाषा, साहित्य और जीवनशैली को जिंदा रखते हुए लगातार शोशण और विस्थापन के शिकार रहने के कारण ही इस समुदाय में आक्रोश का भाव तीव्र होता रहा। जैसे जैसे आदिवासी वर्ग शिक्षा और नागरी परिवेश से परिचित हुआ, उसे अपने मूल्य और वजूद का एहसास होने लगा।

जब-जब दिकुओं ने आदिवासी जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप किया, आदिवासियों ने उसका प्रतिरोध किया है। पिछली दो सदियाँ आदिवासी विद्रोही की गवाह रही है। इन विद्रोही से रचनात्मक उर्जा भी निकली लेकिन वह मौखिक ही अधिक रही। संचार माध्यमों के अभाव में वह राष्ट्रीय रूप नहीं धारण कर सकी। समय-समय पर गैर आदिवासी रचनाकारों ने भी आदिवासी जीवन और समाज को अभिव्यक्त किया। साहित्य मे आदिवासी जीवन की प्रस्तुति की इस पूरी परंपरा को हम समकालीन आदिवासी साहित्य की पृश्ठभूमि के तौर पर रख सकते है।

आदिवासी साहित्य का स्वरुप व्यापक है। इस साहित्य में विद्रोह है, वेदना है, अभिव्यक्ति है, नकार है। अदिमों के सर्वांगीण विकास के प्रश्न को लेकर यह स्थापित समाज व्यवस्था को ललकारता है। जो जीवन मुल्य आदिवासीयों के नही हैं या विरोधी है, यह साहित्य उन्हे अस्वीकारता है। आदिवासी लेखन तथाकथित मुलधारा के रंगभेद व नक्सलीय छदय साहित्य के मानदंडों को नकारते हुए धीरे धीरे स्वयं के प्रतिमान गद रहा है। इसकी अपनी भावभूमि है, सौदंर्य बोध है, विश्वदृष्टि है। सामुहिक मुल्यों एवं सह अस्तित्व में अटूट विश्वास ही उसकी विशेषता है। आदिवासी दर्शन के प्रकृति और पुरखों के प्रति आभार का भाव निहित होता है। यह साहित्य समुचे जीव-जगत को समान महत्त्व देकर मनुष्य की श्रेष्ठता के दंभ को खारिज करते है। आदिवासी साहित्य की कोई केंद्रीय विधा नही है। अन्य साहित्यों की तरह उसमें आत्मकथात्मक लेखन भी उपलब्ध नहीं होता क्यों की आदिवासी समाज में 'मैं' नहीं 'हम' में विश्वास करता है। उसकी अभिव्यक्ती प्रतीकों के माध्यम से होती है। वह सामूहिकता की बात करता है, 'हम' की चिंता करता है। इसलिए आदिवासी लेखकों ने अपने संघर्ष में कविता को मुख्य हथियार बनाया है। आदिवासी साहित्य अपने दायरे में अन्य उत्पीड़ित अस्मिताओं के प्रति संवेदनशील है।

आज आदिवासी लेखन अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक विशिष्टताओं का उद्घाटन कर उस समूची व्यवस्था को प्रश्नांकित कर रहा है, जिस पर सभ्य कही जानेवाली सभ्यता समूची सांस्कृतिक परंपरा के पुनर्पाठ की आवश्यकता भी जता

रहा है। आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। यह ऐसा विमर्श है जिससे इस समुदाय की परंपरा, रूढियाँ, संस्कृति, अन्याय, अत्याचार, अपमान, शोषण सभी कुछ बयान हो रहा हैं। लोककला, संगीत, नृत्य, संस्कृति, भाषा, बोली, लिपी और भाषा को लम्बे अरसे तक पहचान ही नहीं मिल सकी इसलिए उनका संरक्षण और विकास भी बाधित हुआ। प्रतिष्ठित मराठी आदिवासी साहित्यकार वाहरू सोनवणे जी का यह कहना ठीक है कि लिखित ही केवल साहित्य होता है यह कहना ही आदिवासीयों की दृष्टि से असंगत है। साहित्य और कला, साहित्य और जीवन के बीच, जो दीवारें समाज में खड़ी है, उन दिवारों का आदिवासी समाज में कुछ भी स्थान नही है। इन व्याख्याओं को बदलना जरूरी है क्यों की आज आदिवासी समाज में कई प्रथाएँ लोकगीत और नाटक तथा अनेक अन्य कलाएँ विद्यमान हे जिसे शब्दबद्ध नही किया गया है।

आदिवासियों को गैर-आदिवासियों द्वारा जंगली, बर्बर, मर्ख, भोला या बुद्ध की संज्ञा देकर उनमें हीन भावना विकसित कर दी कि व पिछड़े है तथा किसी काबिल नही है। आदिवासी साहित्य उन्हें इस हीनग्रंथि से मुक्त कराने का हाथियार है, चेतना जागृत करने का प्रमुख स्त्रोत है, आत्मविश्वास जगाने का जरिया है। आदिवासियों में स्वायत्त प्रतिरोध की संस्कृति है, सामाजिक स्वायत्तता भी है। यह संगठन के स्तर पर राजनीतिक स्वायत्तता के स्तर पर दिखती है। उसका एक ढाँचा है जिसे आदिवासी परंपरा से जीता चला आ रहा है। इस परंपरा से छेड़छाड करने वालों का आदिवासी प्रखर विरोध करते है।

आदिवासी साहित्य उन वन जंगलों में रहने वाले वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर नही दिया गया। यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है जिनके आक्रोश पर मुख्य धारा की समाज व्यवस्था ने कभी कान ही नही धरे। यह गिरी, कन्दाराओं में रहने वाले अन्याय गरजों का क्रांति साहित्य है। सदियों से जारी क्रुर और कठोर न्यायव्यवस्था ने जिनकी सेकडों पीढियों को आजीवन वनवास दिया, उस आदिम समूह की मुक्ति का साहित्य है, आदिवासी साहित्य।

आजादी के बाद भारतीय सरकार द्वारा अपनाए गए विकास के गलत मॉडल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल और जमीन छीनकर उन्हें बेदखल कर दिया। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई। इस प्रक्रिया में एक और उनकी सांस्कृतिक पहचान उनसे छुट रही है, दूसरी ओर उनके अस्तित्व की रक्षा कर प्रश्न खडा होता है और अगर अस्तित्व बचाते है तो सांस्कृतिक पहचान नष्ट होती है, इसलिए आज की आदिवासी-विमर्श हैं। क्योंकि आदिवासी साहित्य अपनी रचनात्मक उर्जा आदिवासी विद्रोही की परंपरा से लेता है, इसलिए उन

आंदोलनो की भाषा और भूगोल भी महत्त्वपूर्ण रहा है। आदिवासी रचनाकारों का मूल साहित्य उनकी इन्ही भाषाओं में है।

आदिवासी साहित्य जीवनवादी साहित्य है। इसमें लक्षित विद्रोह जीवन के बुनियादी हकों से महरुम करने वाली व्यवस्था के विरोध की अभिव्यक्ति है। आदिवासी समाज की मुक्ति के लिए संघर्षरत आदिवासी वीर पुरुषों का राजनीतिकार सामाजिक विद्रोह इनकी मुल प्रेरणा है। यह साहित्य केवल शब्दबद्ध रचना नहीं है बल्कि मुददो पर आधारित, शोषित, उपेक्षित, बहिष्कृत वर्ग की आवाज उठाने वाला प्रतिबद्ध, परिवर्तनकामी और संकल्पबद्ध साहित्य है। प्रस्थापितो का यह साहित्य परिवर्तनकामी है, क्रांतिकारी है। इसमें प्रतिरोध का भाव है। विरोध का मुददा है। अस्वीकार का साहस है। स्वीकार की दलीलें है। अनुभव की पुंजी है। आदिवासियों के बारे में इतिहास वेत्ताओं, समाजचिंतको, साहित्यकारों ने सेकडों वर्षे से जो कलुषित धारणाएँ बना रखी थी उनके प्रति तीव्र प्रतिरोध का भाव आदिवासी लेखन में प्रकट हो रहा है। आदिवासी विमर्शकार राजाराम भादू ने भी कहा है, "आदिवासी साहित्य के उदभव और परिप्रेक्ष्य निर्माण में मराठी के दलित साहित्य के संबंध को जोडकर देखा गया है जो सही भी है लेकिन आदिवासी अस्मिता और उनकी संघर्षधर्मी चेतना के विकास और प्रतिवरोध संगठनों के निर्माण में नक्सलवादी आंदोलन के प्रेरणा प्रयासों को वहाँ लगभग नजर अंदाज कर दिया गया है।

आदिवासियों की अपनी अलग संस्कृति, अलंग परंपरा, रहन-सहन रहा है। इनकी लड़ाई हमेशा जल, जंगल, जमीन की लढाई रही है। आदिवासियों द्वारा लिखा जा रहा साहित्य मात्र समाजशास्त्रीय किस्म का लेखन या सब्लार्टन लेखन का विस्तार भर नही है, बल्कि कहा जा सकता है कि वंचितों उपेक्षितों के मुँह खोलने से भारतीय समाज की अधूरी अभिव्यक्ति अब पूर्णता प्राप्त करने की दिशा में अपने भाषाई एवं सांस्कृतिक अधिकारों के अस्तित्व का संघर्ष एवं विचार विमर्श तो होना ही चाहिए ताकि समाज की विभिन्न परतों को समझा जा सके और उनका विकास किया जा सके। आदिवासी साहित्य में तिरस्कार शोषण, भेदभाव के विरोध एवं गुस्से का ही स्वर उभर रहा है। विकास के तथाकथित दैत्य से दो - दो हाथ हो लेने का जज्बा भी उसमें है। क्यूकिं भेदभाव से पूर्ण, असंतुलित विकास का सबसे बुरा असर आदिवासी समाज पर हो रहा है, इसलिए इसकी सार्थक अभिव्यक्ति भी यही से होगी, क्योंकि आदिवासी समाज आज भी किसी भी भारतीय समाज के मुकाबले हर तरह से जीवन के मोर्चों पर अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है।

आदिवासी साहित्य पर कुछ भी कहने से पहले बेहतर होगा कि आदिवासी

और इससे स्वंय जुडे हुए या किसी के द्वारा जोड़ दिए गए विश्लेशणों पर थोड़ा दृष्टिपात कर लिया जाए। आदिवासी साहित्य संभवतः दुनिया का सबसे प्राचीन और जीवतंता से भरा हुआ साहित्य है। आदिवासियों की इतनी सशक्त अभिव्यक्ति पर किसी की नजर ना जाना या फिर यूँ कहे की स्वघोषित विद्धत मंडली द्वारा जान बुझकर अनदेखा कर दिये जाने के पीछे के कारण क्या हो सकते है, अगर लेखन कला के साहित्य का सर्वाधिक प्रखर लक्षण माना जाता है। तो दुनिया की सर्वप्रथम प्राप्त लिपि 'हडप्पा-मोहनजोदड़ो' की लिपि के लिखने वाले कौन लोग थे? या वे लोग कौन रहे होंगे? यही, इसी भूमि के आदिवासींना जिस माप-नात और जिस डिज़ाइन के गहने हमें हमारी इन प्राचीनतम संस्कृतियों की खुदाई में मिली है, ठिक उसी माप-नाप और उसी डिज़ाइन के गहने उत्तर-पूर्व के आदिवासी आजभी पहनते है, क्या इस मामले पर किसी मानवशास्त्री या भाषा वैज्ञानिक का ध्यान अभी तक नही गया है?

संदर्भ

1. डॉ मनोज पांडेय, आदिवासी-विमर्श परंपरा के पुनर्पाठ की जरुरत।
2. आदिवासी साहित्य पर जेएनयू में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में दिये गये व्याख्यान।
3. डॉ श्रीमती तारासिंह, आदिवासी साहित्य विमर्श चुनौतिया और सँभावनाऐं।
4. फारवर्ड प्रेस, एबहुजन साहित्य वार्शिक, अप्रैल 2013 अंक में प्रकाशित।
5. सं रमणिका गुप्ता, आदिवासी साहित्य यांत्र संस्करण।
6. सं खन्नाप्रसाद अमीन, आदिवासी साहित्य।

डॉ. आसिफ उमर

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

जन्म : 31 जनवरी 1979
ग्राम पोटरिया, जनपद-जौनपुर, उत्तर प्रदेश

शिक्षा : बी.ए (ऑनर्स) हिन्दी 1999, जामिया मिल्लिया इस्लामिया
: एम. ए.(हिन्दी) 2001, जामिया मिल्लिया इस्लामिया
: पी-एच.डी. (हिन्दी) 2006, जामिया मिल्लिया इस्लामिया

पुस्तक : कबीर और सामंतवाद **अनुवाद** : मेंअमारान-ए-जामिया

प्रकाशित रचनाएं : वर्तमान साहित्य, शोध दिशा, भक्तिकालीन कविता, इक्कीसवीं सदी में मध्यकाल का पुनर्पाठ, जकिया जुबैरी : परदेस मे देस और अन्य पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं में लेख और समीक्षाएं

सम्पादन एवं सहयोग : एम. ए. हिन्दी (दूरस्थ शिक्षा) 2015-पाठ्यक्रम की 12 पुस्तकों का संपादन, तहजीब पत्रिका का संपादन वर्ष 1997-98, 1998-99

पुरस्कार व सम्मान : राजीव गांधी समाज रत्न सम्मान 2015, महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सम्मान 2016, अफगानिस्तान उच्च शिक्षा सम्मान (दूरस्थ शिक्षा में) 2015

मोबाईल : 9810904918, **ईमल** : aumar1@jmi.ac.in

मो. आजम शेख

जन्म : 30 सितंबर, 1992 मोतीझरना (संथाल परगना) झारखण्ड

शिक्षा : स्नातक और स्नातकोत्तर हिन्दी (दिल्ली विश्वविद्यालय)
: एम.फिल (हिन्दी) जामिया मिल्लिया इस्लामिया

वर्तमान में जामिया मिल्लिया इस्लामिया में शोधरत (पी-एच. डी. हिन्दी)

ईमेल : azamsheikh760@gmail-com
मो. : 9582439263

साहित्य संचय
ISO 9001 : 2015 प्रमाणित प्रकाशन
हम करते हैं समय से संवाद
www.sahityasanchay.com
e-mail : sahityasanchay@gmail.com
Mob. : 9871418244, 9136175560

₹ 200
ISBN : 978-93-88011-53-2